दो-शब्द

दण्डी गुरू स्वामी विरजानन्द जी तथा महर्षि दयानन्द जी दो ऐसे ऐतिहासिक महापुरूष है जो अपने आप में अनुपम एवं विलक्षण है। दोनों ही ईश्वर-भक्त, योगाभ्यासी, वीतराग संन्यासी, तपस्वी, त्यागी, ब्रम्हाचारी, वितैषणा-पुत्रेषणा-लोकेषणा रहित, सत्यान्वेषी, शास्त्रार्थ समर के अजेय योद्धा, स्पष्टवादी, राष्ट्र-भक्त, वैदिक संस्कृति के पोषक तथा व्याकरण के अिद्वतीय विद्वान थे। बड़े से बड़ा प्रलोभन भी उन्हें अपने आदर्शो से विमुख नहीं कर सका। उनके सामने किंचन-मात्र भी अपना किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं था बल्कि डनहोंने अपना सर्वस्व मानव-मात्र की सेवा में समर्पित कर रखा था। रात-दिन बस एक ही चिन्ता कि आर्यावर्त्त की ज्ञान-गरिमा को पुनः प्रचारित व प्रसारित करके समृद्ध करें ताकि हमारा वही प्राचीनतम् खोया हुआ गौरव हमें प्राप्त हो सके। दोनों ही का मानना था कि महाभारत के भयंकर युद्ध के समय से ही इस विश्व-गुरू आर्यावर्त्त का पतन आरंभ हुआ और तत्व-वेत्ता, आत्म वेत्ता एवं वेद-वेत्ता ऋषियों के आभाव में यह पतन निरन्तर और अधिक आत्मघाती होता चला गया। जो भी तथाकथित समाज सुधारक कार्यक्षेत्र में निकला किसी न किसी अपनी एषणा का शिकार हो कर इस महान् भारत को रसातल की ओर ही ले जाता रहा। किसी में भी इतना साहस नहीं था कि एषणारहित होकर एक ईश्वर, एक धर्म तथा मानव-मात्र के उत्थान के लिए जीवन-पद्धति की उद्घोषणा कर सके। इस प्रकार ये दिशाहीन तथाकथित समाज-सुधारक, गुरू, पैगम्बर एवं मसीहा मानवता को और भी अधिक खण्डित करने का ही पाप करते रहे।

वर्तमान में स्थिति और भी अधिक विकट से विकटतर होती जा रही है। दिन-प्रतिदिन नए से नया कोई व्यक्ति उठ खड़ा होता है और